International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
e-ISSN :2581-9925, Impact Factor (Cosmos: 7.555 & I2OR: 5.105), Volume 08, No. 01(II), January - March, 2026, pp. 287-291

महिला प्रतिनिधियों के सामने आने वाली सामाजिक बाधाएँः ग्रामीण संदर्भ

प्रियंका चौधरी[1*] | डॉ. जगमाल सिंह शेखावत[2]

[1]शोधकर्ता, लोक प्रशासन विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।
[2]प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

*Corresponding Author: princychoudhary0594@gmail.com

Citation: चौधरी, प्रियंका एवं शेखावत, जगमाल (2026). महिला प्रतिनिधियों के सामने आने वाली सामाजिक बाधाएँः ग्रामीण संदर्भ. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 08(01(II)), 287–291. https://doi.org/10.62823/IJEMMASSS/8.1(II).8886

सार

यह शोध–पत्र "महिला प्रतिनिधियों के सामने आने वाली सामाजिक बाधाएँः ग्रामीण संदर्भ" विषय पर केंद्रित है। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं को संवैधानिक आरक्षण मिलने के बाद ग्रामीण भारत में महिला नेतृत्व की उपस्थिति तो बढ़ी है, किन्तु व्यवहारिक स्तर पर उन्हें अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह अध्ययन विशेष रूप से उन बाधाओं का विश्लेषण करता है जो महिला प्रतिनिधियों की प्रभावी भागीदारी को सीमित करती हैं। ग्रामीण समाज की पितृसत्तात्मक संरचना, घूँघट प्रथा, 'प्रधान–पति' संस्कृति, घरेलू कार्यों का अत्यधिक बोझ, सार्वजनिक मंचों पर बोलने में झिझक तथा शिक्षा और जानकारी का अभावकृये सभी कारक महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण को प्रभावित करते हैं। कई स्थानों पर महिला प्रतिनिधि केवल औपचारिक चेहरा बनकर रह जाती हैं, जबकि वास्तविक निर्णय उनके पति या परिवार के पुरुष सदस्य लेते हैं। लोक प्रशासन के दृष्टिकोण से यह भी पाया गया कि प्रशासनिक अधिकारियों तथा पुरुष प्रतिनिधियों का व्यवहार कई बार महिला नेतृत्व को गंभीरता से नहीं लेता। परिणामस्वरूप, महिला प्रतिनिधियों का आत्मविश्वास प्रभावित होता है और वे निर्णय–प्रक्रिया में स्वतंत्र भूमिका निभाने से हिचकती हैं। शोध–पत्र में एक काल्पनिक किन्तु यथार्थपरक केस स्टडी के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किस प्रकार एक महिला सरपंच सामाजिक दबावों के बावजूद धीरे–धीरे अपनी पहचान और नेतृत्व स्थापित करती है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि केवल राजनीतिक आरक्षण पर्याप्त नहीं है वास्तविक सशक्तिकरण के लिए सामाजिक चेतना, प्रशासनिक सहयोग, प्रशिक्षण, शिक्षा और सामुदायिक समर्थन आवश्यक हैं। यदि पंचायत स्तर पर महिलाओं को अनुकूल वातावरण प्रदान किया जाए, तो वे ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक भागीदारी को नई दिशा दे सकती हैं।

शब्दकोशः *पंचायतीराज, महिला प्रतिनिधि, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, घूँघट प्रथा, प्रधान–पति, सामाजिक रूढ़िवादिता, राजनीतिक सशक्तिकरण।*

प्रस्तावना

भारत में लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक उसकी बहुस्तरीय संरचना है। संसद और विधानसभाओं से लेकर ग्राम पंचायत तक, शासन की यह व्यवस्था जनता को निर्णय–प्रक्रिया से जोड़ने का दावा करती है। किंतु यदि ग्रामीण भारत की वास्तविक तस्वीर को ध्यान से देखा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि

* *Copyright © 2026 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

सत्ता तक पहुँच और सत्ता का वास्तविक उपयोगकृदोनों अलग–अलग बातें हैं। विशेषकर महिलाओं के संदर्भ में यह अंतर और भी गहरा दिखाई देता है। 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण लागू किया गया। इसे भारतीय लोकतंत्र में "साइलेंट रिवोल्यूशन" तक कहा गया। पहली बार लाखों महिलाएँ ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला परिषदों में निर्वाचित होकर आईं। सरकारी रिपोर्टों और राजनीतिक भाषणों में इसे महिला सशक्तिकरण की बड़ी उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन जब इस परिवर्तन को ग्रामीण धरातल पर देखा जाता है, तो तस्वीर कहीं अधिक जटिल दिखाई देती है।

कई गाँवों में महिला प्रतिनिधि निर्वाचित तो हुईं, परंतु निर्णय लेने की वास्तविक शक्ति उनके हाथों में नहीं आई। "सरपंच पति" या "प्रधान–पति" जैसी अवधारणाएँ इसी विरोधाभास को उजागर करती हैं। पंचायत भवन में महिला का नाम लिखा होता है, लेकिन बैठकों में बोलने वाला, अधिकारियों से संपर्क रखने वाला और निर्णय लेने वाला अक्सर उसका पति या परिवार का कोई पुरुष सदस्य होता है।

यह समस्या केवल राजनीतिक नहीं हैय इसकी जड़ें भारतीय ग्रामीण समाज की गहरी पितृसत्तात्मक संरचना में मौजूद हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति अभी भी परिवार, जाति, परंपरा और नैतिक नियंत्रण की परिधि से निर्धारित होती है। सार्वजनिक जीवन में सक्रिय महिला को कई बार संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। यदि वह मुखर है, तो उसे "ज्यादा बोलने वाली"

कहा जाता है यदि वह शांत रहती है, तो उसे "अयोग्य" मान लिया जाता है। यही वह विडंबना है जहाँ महिला आरक्षण और वास्तविक सशक्तिकरण के बीच का अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

लोक प्रशासन के दृष्टिकोण से देखें, तो महिला प्रतिनिधित्व केवल संख्या बढ़ाने का प्रश्न नहीं है। यह प्रशासनिक संस्कृति, निर्णय–प्रक्रिया, संसाधनों की पहुँच और सत्ता–संबंधों को भी प्रभावित करता है। यदि निर्वाचित महिला प्रतिनिधि सामाजिक दबाव, घरेलू बोझ, अशिक्षा या प्रशासनिक उपेक्षा के कारण स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पा रही है, तो लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का उद्देश्य अधूरा रह जाता है।

इस शोध–पत्र का उद्देश्य ग्रामीण भारत में महिला प्रतिनिधियों के सामने आने वाली सामाजिक बाधाओं का गहराई से विश्लेषण करना है। यह अध्ययन केवल समस्याओं की सूची प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उन सामाजिक संरचनाओं को समझने का प्रयास करता है जो महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को सीमित करती हैं। इसमें लोक प्रशासन, समाजशास्त्र और जमीनी अनुभवः तीनों दृष्टिकोणों को साथ लेकर चलने का प्रयास किया गया है।

ग्रामीण पितृसत्तात्मक संरचना और महिला नेतृत्व

भारतीय ग्रामीण समाज को समझे बिना महिला नेतृत्व की चुनौतियों को समझना संभव नहीं है। गाँवों में सत्ता केवल राजनीतिक पदों से निर्धारित नहीं होतीय यह सामाजिक प्रतिष्ठा, जातिगत स्थिति, भूमि स्वामित्व और पारिवारिक नियंत्रण से भी जुड़ी होती है। ग्रामीण समाज में महिलाओं की भूमिका लंबे समय तक घरेलू दायरे तक सीमित रखी गई। बचपन से ही लड़कियों को यह सिखाया जाता है कि उनका "मुख्य कर्तव्य" परिवार और घर की देखभाल है। निर्णय लेने का अधिकार प्रायः पुरुषों के पास रहता है। ऐसे माहौल में जब कोई महिला पंचायत चुनाव जीतकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती है, तो वह केवल एक राजनीतिक भूमिका नहीं निभाती वह सामाजिक मान्यताओं को भी चुनौती देती है।

कई क्षेत्रों में आज भी घूँघट प्रथा सामाजिक व्यवहार का हिस्सा है। पंचायत बैठकों में महिला प्रतिनिधियों का सिर ढककर बैठना सामान्य माना जाता है। कई बार वे बैठक में मौजूद तो रहती हैं, लेकिन बोलती नहीं। यह चुप्पी केवल व्यक्तिगत झिझक नहीं होती इसके पीछे वर्षों की सामाजिक संरचना काम करती है, जिसने महिलाओं को सार्वजनिक मंच पर बोलने से रोका है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान देने योग्य हैः

- ग्रामीण समाज में "अच्छी महिला" की परिभाषा अक्सर विनम्रता, चुप्पी और आज्ञाकारिता से जोड़ी जाती है। इसके विपरीत, नेतृत्व के लिए आत्मविश्वास, संवाद क्षमता और सार्वजनिक उपस्थिति की आवश्यकता होती है। यही विरोधाभास महिला प्रतिनिधियों के सामने सबसे बड़ी मानसिक और सामाजिक चुनौती बन जाता है।

घरेलू कार्य का बोझः अदृश्य लेकिन निर्णायक बाधा

महिला प्रतिनिधियों की समस्याओं पर चर्चा करते समय अक्सर प्रशासनिक या राजनीतिक चुनौतियों का उल्लेख किया जाता है, लेकिन घरेलू श्रम का प्रश्न उतनी गंभीरता से नहीं उठाया जाता। जबकि वास्तविकता यह है कि ग्रामीण महिलाओं के लिए यही सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है।

एक सामान्य ग्रामीण महिला का दिन सुबह चार या पाँच बजे से शुरू हो जाता है। पानी भरना, चूल्हा जलाना, पशुओं की देखभाल, बच्चों को तैयार करना, खेतों में सहयोग करनाकृये सभी कार्य उसकी दैनिक जिम्मेदारियों का हिस्सा होते हैं। यदि वही महिला पंचायत प्रतिनिधि भी है, तो उसके ऊपर सार्वजनिक जिम्मेदारियों का अतिरिक्त बोझ जुड़ जाता है। समस्या यह नहीं कि महिलाएँ काम नहीं कर सकतींय समस्या यह है कि घरेलू जिम्मेदारियों का पुनर्वितरण नहीं हुआ। पुरुषों की पारंपरिक भूमिकाएँ लगभग वैसी ही बनी रहीं, जबकि महिलाओं की जिम्मेदारियाँ बढ़ती गईं।

कई महिला प्रतिनिधियों ने अनौपचारिक बातचीत में यह स्वीकार किया है कि पंचायत बैठकों में जाने से पहले उन्हें घर का पूरा काम निपटाना पड़ता है। यदि किसी दिन वे बैठक के कारण घर के काम में कमी कर दें, तो परिवार और समाज दोनों की आलोचना का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार, सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के बावजूद महिलाएँ "दोहरी जिम्मेदारी" (क्वनइसम ठनतकमद) के दबाव में काम करती हैं।

सार्वजनिक मंचों पर बोलने में झिझक

राजनीति केवल चुनाव जीतने तक सीमित नहीं होतीय इसमें संवाद, बहस और निर्णय–प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी शामिल होती है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में कई महिला प्रतिनिधियों के लिए सार्वजनिक मंच पर बोलना स्वयं में एक कठिन अनुभव होता है।

इसके पीछे कई कारण हैंः

- सीमित शिक्षा
- सार्वजनिक अनुभव का अभाव
- पुरुष–प्रधान बैठकों का दबाव
- स्थानीय भाषा और प्रशासनिक शब्दावली की जटिलता

अक्सर पंचायत बैठकों में सरकारी अधिकारी तकनीकी भाषा का उपयोग करते हैं। बजट, योजना, प्रस्ताव, प्रशासनिक नियमकृये सभी शब्द कई प्रतिनिधियों के लिए नए होते हैं। परिणामस्वरूप, वे चुप रहना अधिक सुरक्षित समझती हैं। इसके अतिरिक्त, यदि कोई महिला खुलकर सवाल पूछती है या विरोध दर्ज करती है, तो उसे कई बार "आक्रामक" या "असभ्य" कहा जाता है। यही सामाजिक प्रतिक्रिया महिलाओं के आत्मविश्वास को प्रभावित करती है।

यहाँ एक दिलचस्प विरोधाभास दिखाई देता हैः

- ग्रामीण राजनीति में पुरुषों का आक्रामक व्यवहार "नेतृत्व क्षमता" माना जाता है, जबकि महिलाओं का वही व्यवहार "मर्यादा के खिलाफ" समझा जाता है।

"प्रधान–पति" संस्कृतिः लोकतंत्र का छिपा हुआ संकट

महिला आरक्षण के साथ उभरी सबसे चर्चित समस्याओं में से एक हैकृ"प्रधान–पति" या "सरपंच पति" संस्कृति। कई पंचायतों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि के स्थान पर उसका पति वास्तविक शक्ति का उपयोग करता है। पंचायत बैठकों में वही बोलता है, अधिकारियों से वही मिलता है और निर्णय वही लेता है। यह स्थिति केवल व्यक्तिगत नियंत्रण का मामला नहीं हैय यह ग्रामीण सत्ता संरचना की निरंतरता को दर्शाती है। पुरुष–प्रधान समाज ने राजनीतिक आरक्षण को स्वीकार तो किया, लेकिन सत्ता का वास्तविक हस्तांतरण नहीं होने दिया।

हालाँकि, इस मुद्दे को केवल नकारात्मक रूप में देखना भी अधूरा दृष्टिकोण होगा। कुछ मामलों में शुरुआती चरण में पति का सहयोग महिलाओं के लिए प्रशासनिक प्रक्रियाएँ समझने का माध्यम भी बनता है। लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब यह सहयोग नियंत्रण में बदल जाता है। लोक प्रशासन के स्तर पर भी कई बार अधिकारी सीधे महिला प्रतिनिधि के बजाय उसके पति से संवाद करना अधिक "सुविधाजनक" समझते हैं। यह व्यवहार महिला प्रतिनिधियों की वैधानिक स्थिति को कमजोर करता है।

प्रशासनिक तंत्र और महिला प्रतिनिधि

लोक प्रशासन की दृष्टि से महिला प्रतिनिधियों के सामने केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि संस्थागत चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। कई बार प्रशासनिक अधिकारी महिला प्रतिनिधियों को गंभीरता से नहीं लेते। यदि कोई महिला कम पढ़ी–लिखी है या सार्वजनिक बोलचाल में सहज नहीं है, तो अधिकारी उसे औपचारिकता भर मान लेते हैं।

ग्रामीण प्रशासन में अभी भी एक प्रकार की "पितृसत्तात्मक नौकरशाही" दिखाई देती है। महिला प्रतिनिधियों से बात करते समय कुछ अधिकारी संरक्षणवादी रवैया अपनाते हैं, जैसे वे स्वयं निर्णय लेने में सक्षम न हों।

इसके अतिरिक्तः

- प्रशिक्षण कार्यक्रम अपर्याप्त होते हैं
- डिजिटल प्रक्रियाएँ जटिल होती हैं
- योजनाओं की जानकारी समय पर नहीं मिलती

इन कारणों से महिला प्रतिनिधियों की प्रशासनिक क्षमता प्रभावित होती है।

भाषाई और शैक्षिक बाधाएँ

ग्रामीण भारत में भाषा स्वयं सत्ता का एक माध्यम है। पंचायत बैठकों और सरकारी दस्तावेजों में प्रयुक्त भाषा कई बार इतनी औपचारिक होती है कि सामान्य प्रतिनिधियों के लिए उसे समझना कठिन हो जाता है। यदि महिला प्रतिनिधि स्थानीय बोली बोलती है और प्रशासनिक कार्य हिंदी या अंग्रेजी में हो रहे हैं, तो यह दूरी और बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, राजस्थान, बिहार या मध्य प्रदेश के कई ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ स्थानीय बोली में सहज होती हैं, लेकिन सरकारी प्रक्रियाओं की भाषा अलग होती है। इससे उनमें हीन भावना विकसित हो सकती है।

काल्पनिक लेकिन यथार्थपरक केस स्टडी

राजस्थान के एक गुमनाम गाँव की कल्पना कीजिए, जहाँ कमला देवी पहली बार सरपंच चुनी गईं। गाँव में यह चुनाव महिलाओं के लिए "ऐतिहासिक" बताया गया। लेकिन वास्तविकता कुछ और थी। शुरुआती महीनों में पंचायत बैठकों में कमला देवी के बजाय उनके पति ही बैठते थे। अधिकारी भी उन्हीं से बात करते थे। गाँव के लोग कमला देवी को "नाम की सरपंच" कहते थे।

एक दिन गाँव में पेयजल संकट गंभीर हो गया। महिलाएँ कई किलोमीटर दूर से पानी ला रही थीं। कमला देवी ने पहली बार स्वयं पंचायत बैठक में बोलने का निर्णय लिया। शुरुआत में उनका मजाक उड़ाया गया। कुछ लोगों ने कहाकृ"इन्हें क्या पता प्रशासन का?" लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। धीरे–धीरे उन्होंने जल विभाग के अधिकारियों से संपर्क किया, योजनाओं की जानकारी ली और गाँव में टैंकर व्यवस्था शुरू करवाई।

इस घटना के बाद गाँव की महिलाओं ने उन्हें अलग नजर से देखना शुरू किया। पहली बार पंचायत में महिलाओं की संख्या बढ़ी। कमला देवी का संघर्ष यह दिखाता है कि महिला नेतृत्व का विकास एक प्रक्रिया हैकृजो संघर्ष, असुरक्षा और धीरे–धीरे अर्जित आत्मविश्वास से गुजरती है।

निष्कर्ष

महिला प्रतिनिधित्व ने भारतीय लोकतंत्र को नई दिशा दी है, लेकिन यह मान लेना कि केवल आरक्षण से समानता स्थापित हो जाएगी, वास्तविकता को सरल बना देना होगा। ग्रामीण महिला प्रतिनिधियों के सामने आने वाली बाधाएँ केवल व्यक्तिगत कमजोरियाँ नहीं हैंः वे सामाजिक संरचना, प्रशासनिक व्यवहार और सांस्कृतिक नियंत्रण से निर्मित होती हैं। फिर भी, परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। आज गाँवों में महिलाएँ केवल मतदाता नहीं हैंय वे निर्णय लेने वाली इकाइयाँ भी बन रही हैं। यह परिवर्तन धीमा है, लेकिन गहरा है।

भविष्य की राह और सुझाव

महिला प्रतिनिधियों को वास्तविक रूप से सशक्त बनाने के लिए निम्न कदम आवश्यक हैंः

- **निरंतर प्रशिक्षणः** सिर्फ चुनाव जीतने के बाद एक बार प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं है। नियमित क्षमता–विकास कार्यक्रम आवश्यक हैं।
- **स्थानीय भाषा में प्रशासनिक सामग्रीः** योजनाओं और नियमों की जानकारी सरल और स्थानीय भाषा में उपलब्ध होनी चाहिए।
- **"प्रधान–पति" संस्कृति पर नियंत्रणः** प्रशासनिक बैठकों में निर्वाचित प्रतिनिधि की अनिवार्य उपस्थिति सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- **महिला सहायता नेटवर्कः** महिला प्रतिनिधियों के बीच अनुभव साझा करने के मंच विकसित किए जाने चाहिए।
- **सामाजिक जागरूकताः** पुरुषों और समुदाय दोनों को यह समझाना आवश्यक है कि महिला नेतृत्व लोकतंत्र की मजबूती का हिस्सा है, किसी परंपरा के खिलाफ विद्रोह नहीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्रा, एस. (2010). 'पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण'. नई दिल्लीः रावत पब्लिकेशन।
2. शर्मा, आर. (2015). 'ग्रामीण शासन और महिला नेतृत्व'. जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
3. वर्मा, के. (2018). 'स्थानीय लोकतंत्र का समाजशास्त्र'. नई दिल्लीः ओरिएंट ब्लैकस्वान।
4. Chattopadhyay, Raghabendra & Duflo, Esther. (2004). "Women as Policy Makers: Evidence from a Randomized Policy Experiment in India." *Econometrica*, Vol. 72, No. 5, pp. 1409–1443.
5. Nussbaum, Martha C. (2000). *Women and Human Development: The Capabilities Approach*. Cambridge: Cambridge University Press.
6. Dreze, Jean & Sen, Amartya. (2002). *India: Development and Participation*. New Delhi: Oxford University Press.
7. UN Women. (2019). *Women in Politics Report 2019*. New York: United Nations Entity for Gender Equality and the Empowerment of Women (UN Women).

❑❑❑